ISSN 2455-5169

परिवर्तन : साहित्य, संस्कृति एवं सिनेमा की वैचारिकी

मुस्लिम नारी जीवन की अनोखी झांकी – 'मिर्ज़ावाड़ी'

फात्तिमा बीवी. आर

शोध छात्रा, कुसाट
itsmefathi2012@gmail.com

काल मार्क्स ने सही कहा था धर्म अफीम का काम करता है। आज धर्म एक प्रकार का नशा बन गया है। अतीत में और वर्तमान में भी धर्म के इस नशे का शिकार औरत ही है। सामाजिक तौर पर लिंग की संरचना ने पहले ही समाज को स्त्री और पुरुष के रूप में विभाजित किया है। इसके उपरांत धीरे-धीरे हमारा समाज पुरुष प्रधान या पुरुष सत्तात्मक बन गया। इस पुरुष सत्तात्मक समाज ने स्त्री को हमेशा अपने अधीन बनाय रखने की कोशिश की और यह कोशिश आज भी जारी है। हमेशा औरत को ही धर्म के नाम पर अपनी आज़ादी की कीमत चुकानी पड़ती है। किसी एक धर्म में नहीं, हर धर्म में यही हो रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि समकालीन समय में भी हमारे समाज की हाल बहुत ज्यादा बदली नहीं है। साहित्य ही एक ऐसा एक माध्यम है जिसके माध्यम से समाज में बदलाव लाया जा सकता है। इस कारण साहित्य और साहित्यकार दोनों को समाज से जुड़े रहना आवश्यक है क्योंकि साहित्य के माध्यम से ही सामाजिक समस्याओं को साधारण जनता तक पहुंचा सकते हैं। "साहित्य का एक दायित्व अपने पाठकों को यह बोध कराना भी है कि वे किस समय और समाज में जी रहे हैं। यह किसी भी रचना की समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है, जो लेखक ऐसे बोध को बोझ समझते है, वे अपनी रचना में अपने समय और समाज की निवासी होने के बदले आत्मलोक की वासी होना पसंद करते है। यह प्रसन्नता की बात है कि नयी पीढ़ी में ऐसे रचनाकार बहुत कम है।"[1]

समकालीन साहित्यकार अनेक सामाजिक मुद्दों पर खुलकर चर्चा करने लगे और उन्हीं समस्याओं को केंद्र में रखकर साहित्य का सृजन करने लगा। इसी कारण समकालीन साहित्य समाज से अधिक निकट होता है। समाज में व्याप्त हर प्रकार के कुप्रथाओं एवं समस्याओं पर आज साहित्य लिखा जा रहा है। धर्म किस प्रकार स्त्री के पैरो की बेड़ियाँ बन जाती है तथा धर्म के नाम पर जिस प्रकार के कुरीतियाँ समाज में आज भी कायम है इस पर भी अनेक साहित्यकारों ने सृजन की है।

मुसलिम जीवन व्यवस्था पर लिखा गया सशक्त एवं चर्चित उपन्यास है 'मिर्ज़ावाडी'। समकालीन साहित्यकारों में चर्चित नाम परवेज़ अहमद द्वारा रचित इस उपन्यास के केंद्र में मुसलिम स्त्रियां हैं। मिर्ज़ावाडी में रचनाकार ने ऐसे सशक्त नारिपात्रों को सामने रखा है जो बिना कोई नारा लगाए

अपनी अस्मिता को पहचानने वाली तथा उसके लिए संघर्ष करने वाली हैं। मिर्ज़ावाडी की स्त्रियां धर्म का अंधा अनुकरण करने वाली नहीं है। इसके केंद्र में ऐसी मुस्लिम नारियां हैं जो अपने हक की लड़ाई लड़ने के लिए एकदम तैयार हैं। हिंदी साहित्य जगत में मुस्लिम नारियों को केंद्र में रखकर बहुत ही कम उपन्यास लिखा गया है। इस उपन्यास में सशक्त नारी पात्रों को केंद्र में रखने के साथ ही उनके माध्यम से समस्याओं का हल ढूँढ निकालने का भी प्रयास उपन्यासकार करते हैं।

मिर्ज़ावाडी उपन्यास का कथानक आमना नामक सशक्त एवं प्रगतिशील नारी पात्र के चारों ओर घूमता है। आमना बाईस साल की विधवा है। आमना का जीवन संघर्ष उसका पति यकीन अहमद की मृत्यु के उपरांत शुरू होता है। पति के गुज़र जाने के बाद आमना अपने बच्चों के साथ अपनी अम्मी के पास मिर्ज़ावाड़ी आकर रहने लगती है। उसने अपने और अपने बच्चों की जिंदगी को खुद की बलबूते पर संवारने की कोशिश की है और उपन्यास के अंत तक आते-आते वह उस कोशिश में सफल हो जाती है। मुस्लिम समाज में स्त्री को चहारदीवारी में कैद करने की तथा उसके जीवन को पुरुष के अधीन बनाने की कोशिश हमेशा रही है। इसके लिए पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था ने स्त्रियों के खिलाफ धर्म एवं धार्मिक ग्रंथों का उपयोग किया है। वे लोग आज कल कुरआन शरीफ के आयतों को मनमानी ढंग से व्याख्यायित करके अपनी स्वार्थ के लिए उपयोग करते हैं। इसके लिए अनेक उदाहरण उपन्यास में मौजूद हैं। पर्दा प्रथा, तलाक प्रथा, औरत को मस्जिद प्रवेश करने की इजाजत न देना आदि इसके लिए उदाहरण हैं। मिर्जावाड़ी उपन्यास में उपन्यासकार ने इन सारी कुप्रथाओं को डटकर जवाब दिया है साथ ही इन प्रथाओं के पीछे की वास्तविकता को भी सामने लाया है।

मिर्ज़ावाड़ी पहुँचते ही विधवा आमना पर दूसरी शादी का दबाव आ जाता है। क्योंकि मुहल्लेवालों की दृष्टि में मर्द के बिना औरत का कोई अस्तित्व ही नहीं है। वह अकेली नहीं जी सकती। यह मात्र मिर्ज़ावाड़ी इलाके की ही नहीं संपूर्ण भारतीय समाज की धारणा है। लेकिन आमना इस धारणा को गलत स्थापित करती है। वह अपने पैसे से सिलाई मशीन खरीदकर तथा अपनी कमाई से जिंदगी काटकर दूसरों के लिए मिसाल बनती है। वास्तव में सच्चाई यही है कि यदि स्त्री को अपने जीवन की लड़ाई लड़नी है, समाज में अपना अधिकार पाना है तो उसे सबसे पहले आत्म पहचान से युक्त होनी चाहिए। "नारी स्वतंत्रता चेतना का उदय नारी के मन में व्यक्तित्व की खोज, अस्मिता की पहचान, सुरक्षा के प्रति सतर्कता, उसकी शैक्षिक जागरूकता और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण ही हुआ ।"[2] आमना का जीवन संघर्ष यह बात स्थापित करता है।

आमना के समान ही और एक सशक्त नारी पात्र है उसकी माँ बी. वह तो उम्र से बूढ़ी होने पर भी सोच से एकदम प्रगतिशील है। वह सबकी मदद करती है। मुहल्ले वालों की हर छोटी-बड़ी बिमारियों के लिए घरेलू नुस्खा उसके पास है। वह किसी भी हालत में अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के लिए तैयार रहती है। इसलिए अपने पति की संपत्ति पाने के लिए भाई साहब के साथ मुकदमा लड़ती है। क्योंकि पति की मेहनत से बनी जायदाद को वह आसानी से नष्ट नहीं कर सकती थी। अपने हक के बारे में वह वाकिफ थी। बी किसी भी हालात से हार मानने को तैयार नहीं होती। आमना के चरित्र में भी यही विशेषता देखने को मिलती है। अपनी माँ के समान आमना भी सशक्त है वह अपने बच्चों को भी सशक्त बनाती है। इसी कारण आमना की बेटी फातिमा अपने साथ बदतमीजी करनेवाले लड़के के ऊपर चप्पल उड़ाते हुए मिसाल बन जाती है।

आमना हो या उसकी माँ बी., दोनों मिलकर मुस्लिम धर्म की कट्टरता एवं पाखंडता का डटकर विरोध करती हैं। विश्व में धर्म का निर्माण मानव कल्याण के लिए हुआ है। मानव को नैतिक एवं उदात्त बनाना ही उसका मुख्य लक्ष्य है। लेकिन आज उसका उद्देश्य एवं स्वरूप बदल गया है। वह मात्र मनुष्य की स्वार्थ पूर्ति का साधन बन गया है। आज इस धार्मिक पाखंडता और रूढ़ ग्रस्तता का सबसे बड़ा शिकार स्त्री है। इसके अनेक उदाहरण उपन्यास में देखने को मिलते हैं। जब फातिमा को लड़कों के साथ स्कूल भेजने की बात उठ जाती है तो लड़की की बुरखा पहनने की बात भी चिढ़ जाती है। यहाँ पर फातिमा पर बिना बुरखे से बाहर जाने की तथा लड़कों के स्कूल जाने की बातों पर लोग पाबंदी लगाते हैं। आम तौर पर हमारे समाज में भी इस प्रकार के कट्टर सोचवाले लोग मौजूद हैं। वे इस प्रकार की पाबंदी लगाकर लड़कियों से उनकी आज़ादी छीनते हैं। मुहल्लेवालों की सोच के मुताबिक लड़का लड़की एक साथ नहीं पढ़ सकते, एक दूसरे से खुलकर बातचीत नहीं कर सकते, लड़की बिना बुरखा पहने घर से बाहर नहीं निकल सकती। वे फातिमा को उसकी मर्ज़ी के विरुद्ध बुरखा पहनाने पर तुले हुए होते हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में उपन्यासकार आमना के माध्यम से पर्दा प्रथा के बारे में पाठकों को समझाते है कि "शर्म औरत की आँखों में होती है, शर्म औरत के खून में होती है और पर्दा और बुरखे के ज़रिये औरत को जिस गंदगी से बचाने की कोशिश होती है वो गंदगी मर्द की आँख में; उनकी निगाह में है। तो इलाज मर्द की बर्ताव का किया जाना चाहिए... आखिर मैं यही कहूंगा कि जो बिना परदे और बुरखे के खुद को महफूज कर रही है, वह भी कोई गुनाहगार नहीं।"[3] यहाँ पर उपन्यासकार का प्रगतिशील सोच देखने को मिलता है। मुस्लिम समाज में जिस प्रकार विभिन्न आचार विचार के माध्यम से लड़कियों के मर्जी के बिना उनपर पाबंदी लगायी जाती है इसका चित्रण यहाँ देख सकते है। किसी भी प्रकार के विश्वास या आचरण को

किसी पर थोपने का अधिकार किसी को नहीं है। यही बात उपन्यासकार समझा रहा है। यहाँ पर विशेष बात यह है कि विद्रोह का स्वर नारी पात्रों के माध्यम से ही उठायी गयी है।

इस तरह मुस्लिम समाज में यह धारणा मौजूद है कि स्त्री को मस्जिद में प्रवेश करने की इजाजत नहीं है। वास्तव में यह धारण भी खुरआन के वचनों के गलत व्याख्या के कारण बनी हुई है। यथार्थ में औरत की मस्जिद में प्रवेश करना कोई गुनाह नहीं है। उपन्यास में इस बात का जिक्र देख सकते हैं। यहाँ पर उपन्यासकार खुरआन के नाम पर बनी मिथ्या धारणाओं को खुरआन के माध्यम से ही जवाब देता है; "ये तो कहीं नहीं लिखा है कि मस्जिद में औरत की कदम पड़ने से मस्जिद नापाक हो जाती है। लेकिन हाँ रसूल लल्लाह के हवाले हदीसें हैं जिसमें कहा गया है कि औरतों को बच्चों की परवरिश करनी पड़ती है, घर की तमाम जिम्मेदारियाँ निबाहना होता है; इसलिए वह चाहे तो घर पर रहकर इबादत कर सकती है... यानी औरत को मस्जिद में न आने की सहूलियत दी गयी थी। उनपर पाबंदी नहीं लगायी गयी थी... अब औरत को मिली सहूलियत को सज़ा बनाना चाहते है तो आपका मर्जी... । "वास्तव में यही बात सही है। जिन- जिन बातों को औरत की सुरक्षा के लिए और उसकी मदद के लिए धर्मों में रखा गया है, आज उन्हीं बातों को औरत के खिलाफ इस्तेमाल किया जा रहा है। बुरखा हो या किसी भी प्रकार के आचार विचार, यदि स्त्री उसे निभाना चाहे तो उसे निभा ले, नहीं तो वह उसकी मर्जी है। किसी को उसपर पाबंदी नहीं लगानी चाहिए। आजकल केरल के 'शबरीमाला' मंदिर को लेकर भी विवाद चल रहा है। वहाँ पर भी 10 और 40 साल के बीच की औरतों को जाने की अनुमति नहीं थी। लेकिन उच्च न्यायालय ने औरत को अपनी मर्जी के अनुसार वहाँ जाने या न जाने का फैसला लेने का अधिकार दिया है। इस बात को भी हमें औरत की मर्जी पर छोड़ देनी चाहिए। वह चाहे तो जाए नहीं तो उसकी मर्जी। न ही उसपर पाबंदी लगानी चाहिए और न ही ज़बरदस्ती करनी चाहिए। यहाँ मिर्ज़ावाड़ी उपन्यास में भी इस बात को पाठकों तक पहुँचाने का भरपूर प्रयास रचनाकार करता है। इसी कारण मिर्जावाड़ी उपन्यास दूसरी रचनाओं से भिन्न नज़र आता है।

लड़की एवं उसके परिवार वालों पर सबसे बड़ा बोझ है दहेज़। लोगों की धारण है कि शादी के वक्त लड़कियों को दहेज़ देना आवश्यक है। लेकिन यह धारणा भी गलत है। इसके पीछे की वास्तविकता को भी उपन्यासकार सामने लाया है। उपन्यास के पात्र फरीदा और लतीफ़ जब शादी करते है तो वहाँ पर भी दहेज़ की बात उठ जाती है। शादी के वक्त फरीदा को क्या-क्या दिया जा रहा है यह देखने के लिए लोग विचलित रहते हैं। इस अवसर पर बी लोगों को समझाते हुए कहती है "दहेज़ का मतलब है, नयी गृहस्थी शुरू करने की ज़रूरी सामान... दरअसल जब रस्में शुरू होती हैं, उसका मकसद कुछ और

होता है, लेकिन वक्त के साथ उसकी सूरत इतनी बदल जाती है कि वह पहचान में ही नहीं आती।"[4] इस प्रकार वक्त के साथ बदलती परंपराएँ और रीति-रिवाजों के पीछे की वास्तविकता को सामने लाने का सफल प्रयास उपन्यासकार ने किया है। दहेज़ प्रथा के समान तलाक प्रथा और अनमेल विवाह का भी विरोध उपन्यास में देख सकते हैं।

मिर्ज़ावाड़ी उपन्यास में परवेज़ जी ने बहुत खूबसूरती से स्त्री-पुरुष एकता के बारे में समझाते है। लड़कों के साथ खेलने से उनके साथ बात करने से लड़की के बारे में समाज किस प्रकार सोचता है, इसके बारे में भी उन्होंने उपन्यास में चर्चा किया है। समाज में स्त्री को हमेशा संघर्ष करना पड़ता है। उनके सामने मुश्किलें पग-पग पर दिखाई देती हैं। स्त्री के हर एक कदम पर समाज सवाल उठाते हैं। हर वक्त उसे पीछे धकेलने की कोशिश ज़ारी है। फिर भी उसे आगे की और अग्रसर होना चाहिए। उपन्यासकार ने इस संदर्भ को बहुत ही अच्छे ढंग से समझाने का प्रयास किया है। उनके शब्दों में "अगर लहर चाहे तो चट्टानों से टकराकर हार कर बैठ सकती है, लेकिन लहर ऐसा कुछ नहीं करती क्योंकि उसकी जिंदगी का मकसद चुनौती देना है। वो ताउम्र चट्टानों को चुनौत्ती देती रहती है और लगातार चट्टानों से टकराने के बावजूद लहर, लहर ही रहती है, रंग चट्टान का बदलता है, रूप चट्टान बदलती है क्योंकि वो अपनी जगह से हिलती नहीं है।"[5] उपन्यास में अमना इस बात को जानती है तथा लहर के सामान चट्टान का सामना करने में लगी हुयी है।

मिर्जावाड़ी में एक ओर यदि आमना, बी, फातिमा, फरीदा जैसे पात्रों का जीवन संघर्ष देखने को मिलता है तो दूसरी ओर तवायफों के जीवन संघर्ष रानी नामक स्त्री पात्र सामने लाती है। पिंजरवाड़ी और मिर्जावाड़ी दोनों इलाकों की कहानी समान्तर है। दोनों का विकास भी एक साथ ही होता है। लेकिन दोनों का परिवेश एक दूसरे से बिलकुल भिन्न है। पिंजरवाड़ी में पैदा होनेवाली हर लड़की की जिंदगी तवायफों के समान होती है। उन्हें नाच-गान सिखाया जाता है। तवायफों के सामान जिंदगी एवं परवरिश मिलने के बावजूद रानी अपनी जिंदगी को अपनी मर्जी से जीने की तथा विद्रोह करने की हिम्मत रखती है। रानी की भी शादी तीन महीने के लिए एक धनाढ्य के साथ होती है। लेकिन रानी वापस आती है और अपनी पढ़ाई पूरी करके अपनी मनपसंद जिंदगी जीती है। पढ़ाई करने की और सामान्य जीवन जीने की जो आग उसके मन में मौजूद थी वह उसे बुझने नहीं देती। क्योंकि वह जानती है कि शिक्षा आज़ादी का पहला पड़ाव है। रानी बिना कोई शोर शराबा किये अपनी लड़ाई खुद लड़ती है तथा विजय भी हासिल करती है।

इस प्रकार मिर्जावाड़ी उपन्यास में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को तथा उनके जीवन संघर्ष को उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। पूरे उपन्यास में नारी जागरण को लेकर लेखक की प्रगतिशील दृष्टि देखने को मिलता है। इसके लिए एक उत्तम उदाहरण उपन्यास में मौजूद है। उपन्यास में शेख साहब के मृत्यु-उपरांत जब लोग शमशान पहुँच जाते है तो वहाँ लोगों को एक औरत के काम करने का नज़ारा देखने को मिलता है। इस अवसर पर फातिमा उनसे पूछती है कि "आप यह काम क्यों करती है?" तब जवाब के रूप में दी गयी उस औरत का सवाल महत्वपूर्ण है। वह पूछती है कि "ये काम क्यों न करें ? जब मरद ये काम कर सकते हैं तो हम क्यों नहीं कर सकते?"[6] वास्तव में यह सवाल खुद उपन्यासकार का है जिससे हम मुह नहीं मोड़ सकते। यह सवाल एक पल के लिए पाठकों को सोचने के लिए मजबूर कराने वाला है। क्योंकि हमारे समाज में यह धारणा है कि लड़कियां कमज़ोर और डरी हुई होती हैं। इसलिए वे मर्दों के सामान हर प्रकार के काम नहीं कर सकतीं। लेकिन वास्तविकता यह नहीं है। स्त्री और पुरुष, दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक एवं एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। यहाँ पर औरत को मर्द के सामान दर्जा देने वाले परवेज़ जी की सोच एकदम निखरकर सामने आया है जो काबिल तारीफ़ है।

'मिर्ज़ावाड़ी' एक नारी प्रधान उपन्यास है। इसमें उन्होंने मुस्लिम समाज की स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को उसके सारी रंगों के साथ पेश किया है। लेकिन परवेज़ जी की नारियां डरी हुई या समझौता करने वाली नहीं हैं। वह तो प्रगतिशील है साथ ही सशक्त और निडर भी। क्योंकि खुद वे प्रगतिशील सोच का मालिक है। परवेज़ अहमद ने स्त्री विमर्श के पुराने नारे न लगाए, फिर भी स्त्री जीवन के अनेक गंभीर एवं महत्वपूर्ण मुद्दों पर विचार किया है। साथ ही साथ धर्म किस प्रकार अफीम का काम करता है, किस प्रकार वह औरत के पैरों की बेड़ियाँ बन जाता है इसको भी बहुत खूबी से दर्शाया है। इसी कारण उनका उपन्यास 'मिर्ज़ावाड़ी' अन्य उपन्यासों से भिन्न एवं समकालीन नज़र आता है।

संदर्भ :

1. मेनेजर पाण्डेय –आलोचना की सामाजिकता –पृष्ठ संख्या -168
2. डॉ दर्शन पाण्डेय – स्त्री अस्मिता की परख – पृष्ठ - 22
3. परवेज़ अहमद – मिर्ज़ावाडी- पृष्ठ संख्या - 112
4. परवेज़ अहमद – मिर्ज़ावाडी- पृष्ठ संख्या - 94
5. परवेज़ अहमद – मिर्ज़ावाडी- पृष्ठ संख्या- 110
6. परवेज़ अहमद – मिर्ज़ावाडी- पृष्ठ संख्या- 120